

"विकसित भारत में साहित्य की भूमिका"

राम सुधि (शोध छात्र)

डॉ. यतेन्द्र सिंह कुशवाहा (शोध निर्देशक)

हिन्दी विभाग, डी. ए-वी. कॉलेज, कानपुर

(संबद्ध- छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर)

Email: Shivamverma10081996@gmail.com

Email: dryatindrakushwaha@gmail.com

शोध सार- विकसित भारत की संकल्पना स्थूल आर्थिक संवृद्धि अथवा अत्याधुनिक अवसंरचनात्मक विकास के संख्यात्मक विस्तार तक सीमित नहीं है, यह विस्तृत, गहन सभ्यतागत पुनर्जागरण का नव-अभिव्यक्ति है। साहित्य, इस नवनिर्माण और परिष्कार की प्रक्रिया में एक प्रेरणादायी अन्तःमुखी संस्कारकारी ऊर्जा के रूप में सक्रिय है। साहित्य विकास के भौतिक प्रतिमानों को नैतिक अधिष्ठान, संवेदनात्मक गरिमा और संधारणीयता के साथ ही समावेशिता प्रदान करता है। जहाँ तकनीकी प्रगति समाज को यांत्रिकता उन्मुख जोखिम उत्पन्न करती है, वहीं साहित्य मानवीय विवेक और करुणा के बीज-तत्वों के मध्य मनुष्य को मनुष्यता पूर्ण जीवन की ओर उत्प्रेरित करता है।

इस वैचारिक ढांचे में साहित्य प्राचीन प्रज्ञा और आधुनिक नवोन्मेष के मध्य द्वंद्वात्मक संतुलन स्थापित कर जनमानस को पूर्ण उपभोक्तावाद की कंचुकी त्यागकर स्वत्व के बोध को जागृत करता है। साहित्यिक अभिव्यक्ति विकास की मुख्यधारा से ओझल हुए हाशियाग्रस्त स्वरों को मुखर कर प्रगति को समावेशी, न्यायसंगत और सतत बनाती है। विकसित भारत तभी अपनी पूर्णता और प्रभाविता की प्रज्वलित मशाल बन सकेगा, जब वह अस्मिताओं के सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व, संधारणीयता और 'वसुधैव कुटुंबकम्' की वैश्विक नैतिकता से अनुप्राणित हो तथा 'विश्व गुरु' के अलंकरण प्राप्ति की ओर अग्रसर हो।

साहित्य अपनी कालजयी चेतना के साथ राष्ट्र के विस्मृत होते सांस्कृतिक मूल्यों और परंपरागत ज्ञान को समकालीन प्रासंगिकता में पुनर्व्याख्यायित करता है। यह शब्दों का विन्यास मात्र नहीं, वह

रचनात्मक भावनामूलक अभिव्यक्ति है जो प्रज्ञापूर्ण, संवेदनशील, समावेशी और उत्तरदायी समाज के निर्माण की ओर स्फूर्ति ऊर्जा को उत्प्रेरित करता है। साहित्यिक चेतना का अभाव भौतिक उत्कर्ष को प्राणहीन ढांचा मात्र बना देगा, जहां अदम्य जिजीविषा के साथ मनुष्य यंत्रवत संचालित होगा और करुणा, दया, उदारता, नैतिकता की भावनात्मक संवेदना से दूर संत्रास, अजनबीपन, आत्मनिर्वासन, असंगति के मध्य असभ्य-बर्बर पशु सदृश जीवन जी रहा होगा। अतः विकसित भारत की संकल्पना को सार्थकता और पूर्णता प्रदान करने हेतु साहित्य का संस्कारपरक भावनामूलक हस्तक्षेप न केवल अनिवार्य है, अपितु अपरिहार्य भी है।

बीज शब्द- विकसित भारत- 2047, बुनियादी ढांचा, वैज्ञानिक-तकनीकी-आर्थिक विकास, संधारणीय विकास, समावेशन, वसुधैव कुटुंबकम्, डिजिटल युग, संवेदनशीलता, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जनांकिकी लाभांश, सशक्तीकरण, उत्तर-आधुनिक युग, समाजीकरण, आत्मनिर्वासन, संत्रास, अजनबीयत, असंगति आदि।

मूल आलेख- विकसित भारत की परिकल्पना बुनियादी ढाँचे, वैज्ञानिक-तकनीक विकास, आर्थिक संवृद्धि और सकल घरेलू उत्पाद के विस्तृत आकार में समाहित नहीं है। यह एक समन्वित दृष्टिकोण है, जो सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक चेतना, नैतिक उत्थान, साहित्यिक मूलोद्भावना के साथ ही वैचारिक परिपक्वता को अपने अंतरतम में समाविष्ट करता है। 2047 तक एक आत्मनिर्भर, संधारणीय, समावेशी, प्रगति-उन्मुखी भारत का निर्माण आर्थिक नीतियों और योजनाओं के साथ ही राष्ट्र की आत्मा को साकार करने वाले बौद्धिक-दार्शनिक, साहित्यिक-सांस्कृतिक, सामाजिक-नैतिक आदि अवधारणाओं की मजबूत पृष्ठभूमि में होगा। विचार-कल्पना-बौद्धिकता और दार्शनिकता की ऐसी दृष्टि साहित्य की भूमिका को स्वतः स्पष्ट करती है जो केवल विचारों और तथ्यों का संवाहक तथा योजनाओं का क्रियान्वयक न होकर भी व्यक्ति-समाज का पथप्रदर्शक मील का पत्थर है।

'सहितस्य भावः इति साहित्यम्' की अवधारणा पोषित साहित्य, शिल्पगत ढांचे में आबद्ध संरचना मात्र नहीं है; वह प्रखर किन्तु मूक उत्प्रेरक की भाँति उस चेतना का संवाहक है, जो व्यक्ति-समाज-राष्ट्र के मानस को संस्कारित और परिष्कृत कर वैश्विक पटल पर उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर करता है।

साहित्य का मूल योगदान रचनात्मकता और प्रेरणा को जागृत कर विकास मनीषियों की सकारात्मक चेतना को संवेदनशीलता से आपूरित कर निर्दिष्ट एवं सम्यक दिशा में संयोजित करना है। जिसका आधार ग्रहणकर न केवल भारत के वरन् सम्पूर्ण विश्व के संधारणीय और समावेशी विकास की यात्रा करना श्रेयस्कर है। विकसित भारत की धारणा कोई नवोदित और पृथक धारणा नहीं, बल्कि भारत के आदि से वर्तमान तक के सम्पूर्ण विकास को संयोजित कर सभी के सम्मिलित परिणामों से विकास की यात्रा को विस्तार और गहनता प्रदान करना है। जिसमें भारत की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'विश्व गुरु की अवधारणा' पूर्ण प्रतिफलित होकर 'सोने की चिड़िया' के पुनर्निर्माण की ओर अग्रसर हो। यह विश्व बैंक की डॉलर में प्रतिव्यक्ति आय आधार पर वर्गीकृत संरचना की एकांगी अवधारणा नहीं बल्कि, आर्थिक संवृद्धि, उच्च विकास दर और प्रतिव्यक्ति आय की उच्चता के साथ मानव विकास, खुशहाल जीवन, लैंगिक विकास एवं समावेशिता से समृद्ध-सफल-सुखद भारत की कल्पना है।

वस्तुतः साहित्य समाज के दर्पण और प्रतिबिम्ब मात्र तक सीमित न होकर भविष्योन्मुखी दृष्टि प्रदायक है जिसमें वर्तमान भूतकालीन समाज की संरचना, वर्तमान समाज की स्थिति और भविष्य के समाज की रूपरेखा का अंकन होता है। "भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में, जहाँ भाषाई, धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय भिन्नताएँ विद्यमान हैं, वहाँ साहित्य ने एक समान संस्कृति का सूत्रपात किया है, जो 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की भावना को संबल देता है। हिन्दी, उर्दू, तमिल, बंगाली, पंजाबी, मराठी, तेलगू, कश्मीरी जैसी विविध भाषाओं में सृजित साहित्यिक कृतियाँ न केवल भाषा की सीमा को पार करती हैं, बल्कि भारतीयता की एकता में भी योगदान देती हैं।"¹

वर्तमान विज्ञान-तकनीक के डिजिटल युग में यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता है कि साहित्य जैसी कलाएँ जो जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पोषित नहीं करती हैं। उनकी जीवन में कोई भूमिका है या नहीं। यह प्रासंगिकता जीवन के आलोक में इस प्रकार है कि कोई वस्तु समाज के अस्तित्व या विकास में कोई ऐसा योगदान दे पाती है या नहीं, जो समाज के लिए महत्वपूर्ण और अपरिहार्य हो। यह सत्य है कि कोई भी साहित्य मनुष्य की खाय क्षुधा शांत नहीं करता, न ही भौतिक सुख-सुविधाओं को प्रत्यक्षतः उत्पन्न करता है लेकिन जिजीविषा की अदम्य लालसा के मध्य वह मनुष्य को मनुष्य को तरह जीना अवश्य सिखाता है। साहित्य भावनाओं को उद्दीप्त करता है, मनुष्य में प्रेरणा का संचार करता है और मानव जीवन

की समझ को विस्तार और गहनता प्रदान कर मानसिक विकास और कल्पनाशक्ति के विकास के लिए आधार प्रदान करता है। यह आधार रचनात्मकता के विकास में सहयोगी है तथा संवेदनशीलता के लिए आवश्यक। संवेदनशीलता की यह क्षमता लोगों को अपने आसपास के परिवेश, अन्य मनुष्यों तथा प्राकृतिक जीवन में निहित वेदनाओं को गहराई से महसूस करने की सामर्थ्य देती है। यह वह शक्ति है जो समाज के जटिल ताने-बाने को संरचित कर समाज में सहिष्णुता, सौहार्द्र और बंधुत्व की भावना उत्पन्न करती है। आदिकवि वाल्मीकि के मुख से प्रस्फुटित आदिकाव्य-

“मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वमगमः शाश्वतीः समाः।”

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काम मोहितम्।।”²

क्रौंच पक्षी के प्रति उनकी तीव्र संवेदनशीलता का ही विस्फोट था।

विकसित भारत के डिजिटल युग में जहाँ सोशल मीडिया, मोबाइल एप्लिकेशन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव संवेदनाओं को यांत्रिक बनाएगी तब साहित्य ही वह माध्यम बनेगा जो मानवीयता और संवेदनशीलता की पुनर्स्थापना करेगा। विकसित भारत 2047 की संकल्पना के संदर्भ में साहित्य की भूमिका तब और महत्वपूर्ण हो जाती है; जब वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान को मजबूत करने में अपनी हार्ड और सॉफ्ट नीतियों के साथ ही आंतरिक रूप से सामाजिक एकता, सांस्कृतिक आत्मबोध और बौद्धिक सुदृढ़ता की आवश्यकता है। इस समय में साहित्य महत्वपूर्ण साध्य होगा, जो सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण तथा ज्ञान परंपराओं के परिमार्जन और परिष्कार के द्वारा समकालीन पीढ़ी को न केवल अपनी जड़ों से जोड़ेगा बल्कि उन्हें एक जिम्मेदार, विचारशील और सशक्त नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

ध्यातव्य है, विकसित भारत की संकल्पना केवल वैचारिक स्तर की प्रगतिशीलता को नहीं; बल्कि, आज के समाज की रूढ़िवादी तथा यथास्थितिवादी वैचारिकता के पुरजोर खण्डन तथा पूर्वयुगीन विकृतियों के परिष्कार के द्वारा आत्मिक विकास तथा वैचारिक रूप से परिपक्व मानवशक्ति के सृजन को भी सम्मिलित करती है। विश्व के प्रत्येक साहित्य के साथ ही सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्य ने अपनी इस भूमिका को सर्वदा बखूबी निभाया है। हिन्दी साहित्य में प्रत्येक युग में ऐसा हुआ है। भक्तिकाल में कबीर, तुलसी ने; रीतिकाल में घनानंद, भूषण ने; आधुनिक युग में भारतेन्दु, निराला, मुक्तिबोध तथा प्रेमचन्द ने अपने-

अपने समय की प्रतिमानवीय शक्तियों से लगातार वैचारिक स्तर पर संघर्ष किया। “भारत की सभ्यता के विकासक्रम में साहित्य ने केवल ज्ञान के प्रसार का कार्य नहीं किया, बल्कि जनमानस के भीतर एक जागरूक, संवेदनशील और सहिष्णु समाज की नींव भी रखी।³ आज मानवाधिकारों की घोषणा, विभिन्न वैश्विक संगठनों और संविधान के माध्यम से हम जिस समतामूलक समाज का स्वप्न देखते हैं वह धार्मिक समरसता, राजनीतिक चेतना, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक एकता के रूप में वैदिक साहित्य से वर्तमान साहित्य तक किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहा है। गोस्वामी तुलसीदास साहित्य उसे ही मानते हैं जो कल्याण की भावना से आपूरित हो वे लिखते हैं-

“कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।”⁴

साहित्य किसी समाज में वांछनीय परिवर्तन के लिए सक्रिय रूप से सहायक होता है। साहित्य में वह सामर्थ्य है जो समाज के उस मनोभाव को उद्बलित करे, जिसकी आवश्यकता हो। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष में मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती, सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी', महात्मा गांधी के हरिजन और यंगइंडिया; उर्दू कवि मोहम्मद इकबाल एवं जोश मलीहाबादी के साथ पाथेर दावी, राष्ट्रगान, राष्ट्रगीत आदि की महत्वपूर्ण भूमिका के उदाहरण हमारे समक्ष भूतकाल में विद्यमान हैं। गांधी जी के आदर्शों और सत्याग्रह, असहयोग की अवधारणा और आंदोलन रूप को साहित्य ने जनसाधारण तक पहुंचाने का कार्य किया। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से लेकर हिन्दी-उर्दू-संस्कृत, बांग्ला तमिल, तेलुगु, गुजराती आदि भाषाओं में रचित साहित्य ने आत्मनिर्भरता, अहिंसा और स्वदेशी के विचारों को जनांदोलन में परिवर्तित किया।

विकसित भारत में जब मानवीय मशीनीकरण के चक्र में यंत्रीकरण की तीव्रता होगी, उस समय में साहित्य सामान्य व्यक्ति से व्यावसायिक और नौकरशाही तक को सेंसिटाइज़ करने का महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है। यह जनमानस के अंतरतम में एक जागरूक, संवेदनशील और सहिष्णु समाज के निर्माण का संवाहक होगा। “कवित्व-वर्ण-मय चित्र हैं, जो स्वर्गीय भाव-पूर्ण संगीत गाया करता है। अंधकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से, और बाह्य जगत् का अन्तर्जगत् से सम्बन्ध कौन कराती है? कविता ही न?⁵ साहित्य समाज का सिर्फ तटस्थ दर्पण नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन के भावोद्बलन

में सक्रिय हस्तक्षेप कर पूरक की भूमिका का निर्वहन करता है। जहाँ-जहाँ समाज कमजोर होता है, वहाँ साहित्य परिवर्तन का आह्वान करता है और जहाँ साहित्य की अपूर्णता सामने आती है, समाज उत्थर रूप में भावभूमि प्रदान करता है।

उत्तर-आधुनिक युग के तीव्र परिवर्तित भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक परिदृश्य में नवीन मुद्दे, चुनौतियाँ और विमर्श उभर कर सामने आए हैं; और विकसित भारत में भी इनमें वृद्धि होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। संभावनाओं की यह नवीनता ही समाज की जीवन्तता का प्रमाण होगी। ऐसे वातावरण में विचारों के निष्क्रिय प्रतिबिम्ब मात्र से सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक पुनर्रचना और जनचेतना की सक्रिय ऊर्जा को सकारात्मक संवेग देना संभव नहीं होगा, इसके लिए जीवन्त, सक्रिय और युगपरिवर्तक साहित्य की आवश्यकता होगी। समकालीन भारत में साहित्य की भूमिका केवल सृजन तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि वह समाज का सक्रिय परिवर्तनकारी अंग बन चुका है। विकसित भारत- 2047 की संकल्पना में भी वह साहित्य ही होगा; जो भावनात्मक, नैतिक और वैचारिक धरातल पर एक सकारात्मक शक्ति प्रदान करेगा।

साहित्य की प्रासंगिकता जीवन की मूलभूत समस्याओं की चहुंमुखी पहचान में भी दृष्टव्य है। समस्याओं की उथली और तथ्यगत पहचान कोई भी रिपोर्ट, शोध, जर्नल या समाचार पत्र कर सकता है। किन्तु, साहित्य में वह अंतर्दृष्टि होती है जो समस्त उथलेपन को चीरकर, मूलभूत समस्या को हृदयस्पर्शी पृष्ठभूमि में जागृत करती है इसमें वह समस्याएं भी शामिल होती हैं जो सामान्य जीवन में प्रायः नहीं दिखाई देती लेकिन जीवन की विद्रूपता, असंगति, संत्रास, अजनबीयत, आत्मनिर्वासन का मूल कारण होती हैं। साहित्य का यह जागरण ऐसा होता है कि व्यक्ति को आत्मप्रेरणा की स्फूर्ति मिलती है, जो सातत्य होने के साथ ही स्वस्फूर्त होती है। हिन्दी साहित्य में प्रत्येक काल में यह पूर्ण रूपेण विद्यमान रही। रीतिकालीन कवि बिहारी के उद्बोधन परक दोहा-

“नहि पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।

अली-कली ही सों बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।।⁶

के परिणामस्वरूप ऐसी मान्यता है कि जयपुर नरेश अपनी नवोद्भा पत्नी के साथ संलित अनियंत्रित भोगविलास से बाहर निकल राजकाज में संलग्न हो गए थे। विकसित भारत- 2047 को साकार रूप देने के लिए इस प्रकार की प्रेरणा की प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता है; जिनका सम्मिलित प्रभाव न केवल विकसित भारत की संकल्पना को साकार करेगा बल्कि इस विकास को संधारणीयता, समावेशिता और सातत्य प्रदान करेगा।

निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि विकसित भारत की भविष्यरेखा का स्वरूप युवाओं की कर्णधारिता से ही लिखा जाएगा। भारत के जनांकिकी लाभांश की स्थिति इस रेखा निर्धारक की उत्कृष्टता और निकृष्टता की द्विध्रुवीय परस्पर विरोधी रेखा के मध्य स्थित है, जहां एक तरफ उज्ज्वल भविष्य है तो वहीं दूसरी तरफ कलहांतरिता। इस भविष्य रेखा की समुज्ज्वलता इस बात पर निर्भर करेगी कि इस नवोदित अनन्त शक्ति को किस सकारात्मक शक्ति की ओर मोड़ा जाए। आज आवश्यकता है कि साहित्य को युवाओं के पाठ्यक्रम का हिस्सा मात्र न बनाया जाए बल्कि आत्म-विकाश, आत्म-विश्वास, प्रेरणा और सृजनशीलता का माध्यम बनाया जाए। इस दिशा में महान शख्सियतों की आत्मकथाएँ अग्रणी भूमिका का निर्वहन कर रही हैं। अब्दुल कलाम की 'विंग्स ऑफ फायर', भगत सिंह की 'जेल की डायरी', डॉ. अंबेडकर की आत्मकथा 'वेटिंग फॉर वीजा', गांधी जी की आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' आदि जैसी कृतियाँ युवा हृदयों के अंतरतम में संघर्ष, आदर्शवाद और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना को जागृत करती हैं।

साहित्य सदा से ही बाल्यावस्था की परवरिश से युवावस्था और यहाँ तक कि वृद्धावस्था तक समाजीकरण की प्रक्रिया का अत्यावश्यक माध्यम रहा है। दादी-नानी की कहानियाँ, पंचतन्त्र-हितोपदेश की कथाएँ, संत-महात्माओं की वाणियाँ, लोकोक्तियाँ-कहावतें-मुहावरे, लोकगीत-दन्तकथाएँ आदि इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति करती आई हैं। आज भी इनकी महत्ता कम नहीं हो जाती; स्कूल, विद्यालयों की युवा साहित्यिक समितियाँ, राइटिंग क्लब, बुक क्लब, ऑनलाइन लेखक मंच, ब्लॉग, सोशल मीडिया आदि सृजनात्मक सामाजिक परिवर्तन के संवाहक बन गए हैं। अनेक सर्वेक्षणों की रिपोर्ट यह प्रदर्शित करती हैं कि साहित्यिक अध्ययन युवाओं में विश्लेषण क्षमता, भाषा कौशल, मूल्यनिष्ठ सोच, संवेदनशीलता, योजना प्रयोज्यता आदि में सफलता की संभावना में वृद्धि करती है। इस दृष्टि से भी विकसित भारत-2047 के नवीन स्वप्न काल में साहित्य न केवल युवाओं को एक अच्छा लेखक या पाठक तथा सहृदय बनाएगा

बल्कि एक जागरूक नागरिक, संवेदनशील इंसान, सशक्त नेतृत्वकर्ता और प्रखर प्रेरणा प्रदायक बनने की दिशा का सर्वोत्कृष्ट मार्ग प्रशस्त करेगा।

विकसित भारत- 2047 का आधार जिस औद्योगिक क्रान्ति 4.0 तथा आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस और कम्प्यूटर के माध्यम से विकसित सिंगुलैरिटी एवं स्वचालन के आवरण पर निर्मित होगा; वह तीव्र, सहज, सुलभ और आधुनिकीकृत तकनीक सम्पृक्त युग का निर्माण अवश्य करेगा किन्तु यह नई पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर, ग्रामीण अथवा मूल आधार से काटकर अजनबीयत, संत्रास, असंगति से ग्रसित करेगा और नैतिकता की परिवार-विहीन मूल्य रहित परिभाषा लिखेगा। ऐसे समय में स्वस्थ मनोरंजन की आवश्यकता होगी जो न केवल पाठक को अपनापन प्रदान करे बल्कि विरेचन का माध्यम भी प्रदान करे। साहित्य इस प्रकार के स्वस्थ मनोरंजन और नैतिक उत्कर्ष का संचारक बनेगा। वस्तुतः मनुष्य कोई यांत्रिक वस्तु नहीं है जो सिर्फ भौतिक सुविधाओं का दास हो। उसका वास्तविक स्वास्थ्य और प्रभावोत्पादकता इस बात पर निर्भर है कि वह मानसिक तौर पर प्रसन्न रहे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं- “साहित्य में नैतिकता का समावेश तभी प्रभावी होता है जब वह पाठकों का मनोरंजन कर उन्हें बाँधे रखता है।”⁷

आज के वैज्ञानिक-तकनीकी युग में भौतिक साधनों की उपलब्धि चाहे कितनी भी बढ़ गई हो या बढ़ जाए मनुष्य के समक्ष भावनात्मक व सृजनात्मक संकट अधिक गहरा ही हुआ है, तथा भविष्य में और अधिक गहरे होने की ही संभावना अधिक है। इस संकट के मध्य विकसित भारत में मनुष्य को उसकी मनुष्यता से जुड़े रहने के लिए तथा उसे यंत्र या वस्तु बनाने वाली स्थितियों से बचने के लिए साहित्य न केवल प्रासंगिक है बल्कि उसकी प्रासंगिकता और भूमिका में वृद्धि की संभावना बढ़ती जाती है।

वस्तुतः विकसित भारत की आर्थिक-वैज्ञानिक-तकनीकी अवधारणा में विज्ञान मनुष्य के भौतिक जीवन की आवश्यकताओं को तो पूरा कर सकता है तथा मनुष्य को सुविधा संपन्न बना सकता है, किन्तु उसकी मानसिक, भावनात्मक और सृजनात्मक संतुष्टि के लिए किसी ऐसे माध्यम की आवश्यकता होगी जो भौतिक सुविधाओं के मध्य मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध कर सके।

मनुष्य के जीवन का मूल उद्देश्य संतोष व आनन्द की प्राप्ति है, जिसकी उपलब्धि अन्ततः वस्तुओं पर नहीं बल्कि आत्मिक संतुष्टि पर निर्भर करती है जो जीवन में बढ़ती प्रच्छन्नताओं के मध्य मनुष्य को अपने मूल स्वरूप से जोड़ सके।

ध्यातव्य है कि विज्ञान विकास की अवस्था का माध्यम और शक्ति है जो स्वयं में नैतिकता अनैतिकता से अलग तटस्थ रूप में व्यवहृत होता है। उसका प्रयोग, उसकी मर्यादा, शालीनता, नैतिकता-अनैतिकता तय करता है। 'विवेक विहीन शक्ति' केवल ध्वंस का कारक हो सकती है ऐसे में यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि शक्ति के प्रयोग का विवेक कहाँ से प्राप्त हो। साहित्य ऐसे प्रश्नों का उत्तर समस्या के मूल से खोजता है। भारतीय विदेशनीति के सिद्धांत 'प्रथम प्रयोग न करने' की परमाणु हथियारों के संयमित शक्तिपूर्ण विवेक की नीति, डी-हाइफनाइजेशन की भारतीय विदेश नीति; भारत की नैतिकता से सर्वमित्रता की नीति, वैश्विक नेतृत्वकर्ता बनने की नीति अपनी जिम्मेदारियों के निर्वहन को संपुष्ट करती है; जिनकी आवश्यकता विकसित भारत में अधिक होनी है। ऐसे गूढ़ प्रश्नों के सरल-सहज उत्तरों की आवृत्ति साहित्य में सर्वोचित रूप में प्राप्त होती है। निराला की कालजई कृति 'राम की भक्तिपूजा' के मूल प्रश्न 'अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति' के प्रत्युत्तर में राम की 'शक्ति की मौलिक कल्पना' तथा 'आराधन का दृढ आराधन से उत्तर' एवं 'संयत प्राणों से प्राणों पर' विजय का संधान, जिसमें नैतिक बल अधिक शामिल है, ऐसे ही एक जटिल प्रश्न का संयमित, मर्यादित और नैतिक हल है। वस्तुतः मनुष्य स्वभाव.....।⁸

विश्व की संचार क्रान्ति के दृष्टिगत वर्तमान युग डिजिटल युग है, त्वरा का युग है। चुटकी में, अर्थात् त्वरित समाधान चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति हर कार्य का तत्काल परिणाम पाना चाहता है। किसी के पास न सालों सीखने का समय है न सीखने के लिए किसी के पास जाने का समय। सूचना संचार के विकास से अब घर बैठे ही स्वयं को ज्ञान-सम्पन्न बनाया जा सकता है। गूगल गुरु ने तो बड़े-बड़े गुरुओं की छुट्टी कर दी है। गुरु को ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। प्रौद्योगिकी से कदम मिलाते हुए असंख्य शिक्षक, कलाकार एवं रचनाकार यूट्यूब, फ्लिपबोर्ड, सबस्टैक और स्ट्रीमर जैसे अनेक इंटरनेट प्लेटफार्मों के माध्यम से करोड़ों पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं तक अपनी बात सीधे 'एक क्लिक' में पहुँचा सकते हैं।⁹ इस प्रौद्योगिकी संचालित अध्ययन-अध्यापन

के मध्य साहित्य की प्रासंगिकता और अधिक विस्तृत होती है; क्योंकि एक तरफ तो इस विस्तार से साहित्य की विषयवस्तु के सतही और हल्केपन के प्रति शंका उत्पन्न होती है; तो वहीं दूसरी तरफ प्रसिद्धि प्राप्ति की प्रतिस्पर्धा में वैमनस्य और साहित्य की 'सहितस्य' की भावना क्षतिग्रस्त कर अमर्यादित और अनैतिक साहित्य में रूपांतरित होने की संभावना भी देखी जा सकती है। विकसित भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और विचारों की मौलिकता के आलोक में साहित्य की शिष्टता को बनाए रखकर वैश्विक साहित्य के उत्कृष्ट साहित्य में भारतीय साहित्य को शुमार करना होगा।

भारत का प्राचीन साहित्य जैसे वैदिक संहिता, उपनिषद्, आरण्यक, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, आर्यभट्टीयम् सदृश अनेक साहित्यिक पुस्तकों के साथ ही क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य चिकित्सा, दर्शन, मनोविज्ञान, गणित, विज्ञान, शल्यक्रिया आदि के व्यावहारिक प्रयोगों से आपूरित है। समय-समय पर भारत में संसाधनों की अल्पता और अपर्याप्तता में विभिन्न संपन्न देशों ने भारतीय परंपरागत ज्ञान चुराकर नवीन खोज और आविष्कार के दावे किए हैं। नीम के औषधीय गुणों और हल्दी के एंटीसेप्टिक गुणों का अमेरिकी पेटेंट इसी प्रकार का उदाहरण है। विकसित भारत में हमें अपनी इस प्राचीन धरोहर को साहित्यिक पाण्डुलिपियों, ग्रन्थों, ताड़पत्रों, ताम्रपत्रों से खोजकर प्रयोग करने और उनसे लाभान्वित होने की आवश्यकता है। ऐसा विकास न केवल हमारी ज्ञान परंपरा को मजबूती प्रदान करेगा बल्कि देश की आर्थिक संवृद्धि, पर्यावरणीय संधारणीय विकास और समानतामूलक समावेशी विकास की ओर भी अग्रसर होगा□

आज जब पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन का मुद्दा विश्व के समक्ष सबसे जटिल और अनिवार्य विषयों में एक बना हुआ है□ एक तरफ जहाँ विकास और पर्यावरण के मध्य संतुलन की चुनौती का दैत्याकार प्रश्न उपस्थित है, वहीं दूसरी तरफ जलवायु परिवर्तन और उसके दुष्परिणामों से उपजी विद्रूपताएँ भी कमतर नहीं हैं□ साहित्य इन विषयों पर चेतना जाग्रत करने, प्रेरणा देने और प्राकृतिक पर्यावरण से जुड़ाव के संबंध में विस्तृत पृष्ठभूमि की प्रभावी व्याख्या प्रस्तुत करने का कार्य कर रहा है□ निबंध प्रतियोगिता, चित्रांकन, आलेख लेखन, नुक्कड़ नाटक, कविता-कहानी-उपन्यास लेखन आदि इस संचेतना

के वर्तमान उदाहरण हैं तो वहीं प्राचीन साहित्यिक विधाओं में भी कहानीकार, नाटककार, कवि, उपन्यासकार आदि ने अपनी इस जिम्मेदारी को पहचाना और बखूबी निभाया है□

जिनमें जल संकट, वन विनाश, जैव विविधता संकट, असंतुलित और अनियोजित विकास, समावेशिता, सतत विकास जैसी विषयवस्तु प्रमुखता से उठाई जा रही है जो न केवल पाठकों में प्रकृति के विभिन्न घटकों के प्रति अनुराग उत्पन्न करती है, बल्कि उन्हें पर्यावरण संरक्षण के लिए भी प्रेरित करती है□ “पर्यावरणीय साहित्य ने 'विकसित भारत' की संकल्पना को सतत भारत (टिकाऊ भारत) में रूपांतरित करने की दिशा में बौद्धिक आधार प्रदान किया है□ यह साहित्य यह समझाने में सफल रहा है कि विकास तभी सार्थक है जब वह प्रकृति के साथ सामंजस्य में हो।”¹⁰

नई (राष्ट्रीय) शिक्षा नीति-2020 में भारतीय भाषाएं और उनके साहित्य की मूल स्तम्भ रूप में स्वीकृति तथा इसकी सुरक्षा और संरक्षा के लिए 'ज्ञान भारतम् मिशन' जैसी योजनाएँ इस बात की साक्षी हैं कि साहित्य बाल विकास, रचनात्मक अधिगम, संवेदनशीलता और आलोचनात्मक चिंतन के साथ ही प्रभावोत्पादक शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है□ साहित्य प्रथमतः मातृभाषा में ही अध्ययन-अध्यापन का माध्यम बनता है जो एक तरफ स्थानीय भाषाओं को गौरव प्रदान कर आत्मविश्वास के साथ भाषाई विकास का अवसर प्रदान करता है□ तो वहीं दूसरी तरफ, शिक्षा की विषयवस्तु को प्रभावी रूप में ग्रहण करने में सहायक होता है□ साहित्य अधिगमकर्ता को सिद्धांतों के पाठ्य ज्ञान की सीमित बाध्यताओं से बाहर निकालकर सृजनशील वातावरण में अधिगम का अवसर देता है□

साहित्य की उपादेयता नीति निर्माण की पृष्ठभूमि में जनोन्मुखता को शामिल करती है□ गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं—

□मुखिआ मुखु सो चाहिऐ, खान पान कहूँ एक□

पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।।”¹¹

वर्तमान की 'न्यूनतम सरकार और अधिकतम शासन' की अवधारणा इस प्रकार की साहित्यिक अभिव्यक्ति में सहज ही देखी जा सकती है□ विकसित भारत को जन-अधिकार, जनतंत्र तथा जन-केन्द्रित

शासन की दृष्टि से न्यून शासन में अधिक उत्पादन की अवधारणा से संचालित होना चाहिए जिससे विकास की लोकाभिमुखी धारणा को उपरिगामी विकास प्राप्त हो।

साहित्य की उपादेयता के विस्तार और गहनता की दृष्टि से ही 'काव्यमीमांसा' में राजशेखर ने चार विद्याओं 'पुराण, न्याय (दर्शन), मीमांसा, धर्मशास्त्र' के सारभूत रूप में साहित्य को पंचमी विद्या के रूप में स्वीकार किया है-

“पञ्चमी साहित्यविद्या इति यायावरीयः। सा हिचतसृणामपि विद्यानां निस्स्यन्दः।।”¹²

गौरतलब है, विकसित भारत वह संकल्पना होगी, जिसमें आर्थिक संवृद्धि की तीव्र विकास दर, सतत और संधारणीय विकास, खुशहाली और हरीतिमा, ज्ञानदायी भारत और सांस्कृतिक सम्पन्नता, राजनीतिक मर्यादा और सुचिता, सामाजिक सद्भाव और समावेशिता, नैतिक आचरण और संयमित विचारशक्ति, सर्वकल्याण प्रदायक धर्म और दर्शन, विचार-अभिव्यक्ति और तर्क की स्वतंत्रता आदि के साथ ही सहभागितामूलक विकास का सफ़र तय किया जाएगा। यह विश्व बैंक की प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि के सीमा से अधिक प्रतिव्यक्ति संतुष्टि, कल्याण और प्रसन्नता को अपने अंतरतम में समाहित करेगा। साहित्य इस विकास के मूल में विचार-अभिव्यक्ति का चतुर्मुखी और प्रभावी माध्यम बनकर अपना योग देगा। तर्कशक्ति, धर्म-दर्शन, मौलिक उद्भावना, संवेदनशीलता, कल्पना की मौलिकता, सामाजीकरण और बाल-परवरिश, अधिगम की प्रभाविता के साथ ही साहित्य स्वस्थ मनोरंजन और मानसिक स्वास्थ्य की अपनी स्फूर्ति शक्ति से युवावर्ग की नवचेतना को ऊर्जस्वित कर नवविकास हेतु उत्प्रेरित करेगा। साहित्य केवल वास्तविकता से पलायन और मनोरंजन का साधन नहीं है। साहित्य समय से परे है और आधुनिक दुनिया और हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा है।

विकसित भारत-2047 की परिकल्पना में भारत की समृद्ध साहित्यिक परंपरा रचनात्मक अभिव्यक्ति के साथ ही जनमानस की भावना, कल्याण और सामाजिक परिवर्तन की सशक्त वाहक बनेगी। भारतीय साहित्य ने ऋक् संहिता से आधुनिक डिजिटल साहित्य तक आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण, नैतिक उत्थान, राजनीतिक आंदोलन, प्रखर प्रेरणादायक के रूप में यथासमय अपनी भूमिका का सफल निर्वहन किया है। विकसित भारत की संकल्पना में साहित्य को अपनी पूर्व प्रेरणाओं

के साथ एकल मंच पर स्वस्थ मनोरंजन, चिंतन, सृजन, संस्कार और नवोन्मेष की भूमिका का संवाहक होना होगा; जो युवा-नेतृत्व, हाशियाग्रस्त समूहों की समावेशिता, महिला-दलित-आदिवासी की सहभागिता और सशक्तीकरण, विकास की संधारणीयता, पर्यावरण के प्रति मानवीयता आदि के साथ ही सामाजिक समरसता, जनतांत्रिक मूल्यों की परिपक्वता आदि को संपोषित करे।

विकसित भारत-2047 में साहित्य-दर्शन ही वह कारगर माध्यम होगा, जो वैज्ञानिक-तकनीकी विकास, आर्थिक संवृद्धि से ऊपर उठकर सांस्कृतिक-साहित्यिक रूप से समृद्ध, नैतिक रूप से संवेदनशील, मानवीय मूल्यों से सम्पृक्त, समावेशन और सातत्य की अवधारणा से प्रेरित होकर ऐसे भारत का भवितव्य लिखेगा जो वैश्विक पटल पर न केवल आर्थिक रूप से समृद्ध हो, खुशहाल हो, संधारणीय हो बल्कि विवेक सम्मत, न्यायप्रिय और संवेदनशील राष्ट्र के रूप में 'विश्व गुरु' की साकार प्रतिमा को प्रतिफलित करते हुए नवकीर्तिमान स्थापित करे।

सन्दर्भ सूची-

1. विकसित भारत में साहित्य की भूमिका एवं योगदान : एक अध्ययन, राजेन्द्र कुमार पिवहरे, DOI- <https://doi.org/10.29070/ms3r2d79>
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक नंबर 5
3. विकसित भारत में साहित्य की भूमिका एवं योगदान : एक अध्ययन, राजेन्द्र कुमार पिवहरे, DOI- <https://doi.org/10.29070/ms3r2d79>
4. श्री राम चरित मानस, तुलसीदास, 1/13/5
5. स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 20000, पृष्ठ संख्या-
6. बिहारी-रत्नाकर, सं. श्री दुलारेलाल भार्गव, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1926, दोहा संख्या- 38
7. चिंतामणि (निबंध- कविता क्या है), आचार्य राम चंद्र शुक्ल,
8. कुछ विचार, प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1945, पृष्ठ संख्या- 4
9. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में भाषा और साहित्य, डॉ. वंदना मुकेश, वैश्विक हिन्दी परिवार, <https://share.google/g5RWCwWMgnPtYg8jp> आभार से
10. विकसित भारत में साहित्य की भूमिका एवं योगदान : एक अध्ययन, राजेन्द्र कुमार पिवहरे, DOI- <https://doi.org/10.29070/ms3r2d79>
11. श्री राम चरित मानस, तुलसीदास, 2/315/0
12. काव्यमीमांसा, राजशेखर, चौखंबा, संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस, 1991, पृष्ठ संख्या-17